प्रथम अध्याय

नारी विमर्श की पूर्व पीठिका

प्रस्तावना:--

प्रस्तुत शोधग्रंथ "श्यौराज सिंह बेचैन के साहित्य में नारी पात्रों का मूल्यांकन" इसमें शोधार्थी ने अपने शोधग्रंथ में प्रथम अध्याय नारी विमर्श की पूर्व पीठिका को दर्शाने का प्रयास किया हुआ है। प्रस्तुत अध्याय के माध्यम से शोधार्थी अपने शोधग्रंथ में कहना चाहता है कि, अभी तक नारी विमर्श की उपयोगिता क्यों बनी तथा उसी बिन्दु को ध्यान में रखते हुए स्त्री विमर्श की पडताल करता है यह दर्शाने का प्रयास किया है।

प्रस्तुत अध्याय में नारी विमर्श का अर्थ एवं परिभाषा, स्त्री विमर्श का स्वरूप आदि मुद्दों पर शोधार्थी दृष्टि डालने का प्रयास किया हुआ।

1.1 नारी विमर्श का परिप्रेक्ष्य :-

शोधार्थी को वर्तमान समय में नारी विमर्श की चर्चा करना इसलिए आवश्यक है आज भी साहित्य एवं समाज में वे उपेक्षित पात्रों के रूप में ही उन्हे चित्रित किया गया है, जब ज्योतिबा फूले एवं डॉ. भीमराव अम्बेडकर के 'हिंदूकोडबिल' के लागू ना होने पर उन्होंने कानून मंत्री पद से त्यागपत्र दे दिया क्योंकि समाज का एक वर्ग विशेष सभी को समानता का पक्षधर नहीं मानता। वह वर्ण विशेष को महत्व देता है क्योंकि उसके धार्मिक ग्रंथ मनुस्मृति में समाज को चार वर्णों मे विभाजित किया है । चौथा वर्ण इन तीनों वर्णों का सेवक या दास होता है।

उसमें नारी को भी चौथे वर्ण में रखा है। जबकि हिंदूकोडबिल के माध्यम से समाज में समानता लाने के लिए संविधान में इसका उल्लेख किया

गया लेकिन कुछ लोगों के विरोध के कारण वह आजतक सम्यक रूप से पूर्णता लागू नही हो पाया। आगे हमने विमर्श के बारे में विभिन्न ग्रंथो में उपलब्ध परिभाषा का विवरण दिया है। 'विमर्श' शब्द का अर्थ 'हिंदी-सिंधी-अंग्रेजी' त्रिभाषा कोश में इस रूप में दिया गया है:- किसी बात या विषय पर कुछ सोचना, समझना, विचार करना पर्यालोचन करना। किसी बात या विषय पर परामर्श करना सलाह लेना। किसी बात या विषय पर सोच विचार करते थे या वास्तविकता का पता लगाना। किसी बात या विषय को जांचना और परखना। ज्ञान शब्दकोश में 'विमर्श' शब्द का अर्थ यह दिया है विवेचन, परीक्षण, समीक्षा, तर्क, ज्ञान आदि।

समाज विज्ञान की दृष्टि से विमर्श शब्द पर इस तरह से विचार किया जा सकता है तथा अभिव्यक्ति के उन तत्वों या पहलुओं की संरचना से भी परे जाकर कोई खास अर्थ देने की क्षमता रखते हो इसे हम इस तरह भी कह सकते हैं कि एक निश्चित सामाजिक संदर्भ में भाषा के जरिए किसी एक विषय के इर्दगिर्द- होती हुई बहस द्वारा व्याख्याओं, तात्पर्य और मान्यताओं के निर्णय की प्रक्रिया को हम विमर्श का नाम दे सकते हैं।

1.2 नारी विमर्श का अर्थ :-

'विमर्श 'जब स्त्री से जुड़ता है तब स्त्री का स्त्री होने के कारण पुरुष सत्ता द्वारा जो शोषण हो रहा है उसके खिलाफ संघर्ष और उस समय स्त्री का मनुष्य के रूप में व्यवहार कर सकने और उसी प्रकार व्यवहार कर पाने के प्रयासों का एक लेखाजोखा- माना गया है। नारी विमर्श और कुछ नहीं आत्मचेतना, आत्मसम्मान, आत्मगौरव, समता, और समानताकारी की पहल का दूसरा नाम है नारी विमर्श वस्तुतः स्वाधीनता की प्राप्ति के बाद की संकल्पना मानी गई है। नारी विमर्श अपनी अस्मिता की पहचान, समानता की चिंता, अस्तित्व बोध और अधिकार को पाने और मन में उसके विचार लाने

का चिंतन है। नारी विमर्श अपने समय और समाज में नारी जीवन की वास्तविकताओं को तथा संभावनाओं को तलाश करने वाली एक जीवन दृष्टि है। नारी विमर्श का अभिप्राय है सबसे पहले स्त्री की प्रचलित छवि का आकलन करना, उस पर प्रश्न चिन्ह लगाना एवं उसे दोबारा समझने का प्रयास करना है।

नारी विमर्श पर विस्तृत रूप में चर्चा करने से पूर्व हमें विमर्श के सम्बन्ध में जान लेना अति आवश्यक है डॉ. हरदेव बाहरी ने ' हिंदी पर्याय कोष' में 'विमर्श' शब्द के कई अर्थ प्रस्तुत किए हैं- तबादला- ए-ख्याल, परामर्श, मशवरा, राय, बात, विचार-विनिमय, विचार विमर्श, सोच, विचार आदि। इन अर्थों से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि 'विमर्श' में वह यूरोपीय नारीवाद की उग्रता कट्टरता नहीं है 'नारीवाद' जहाँ नारी को पुरुष के बराबर खड़ा कर देती है वहाँ नारी विमर्श उभय में सामंजस्य मैत्री बराबरी की भूमिका का निर्माण करता है नारीवाद में परामर्श, मशवरा, रायशुमारी, विचार निर्णय हो सकता है । “विमर्श का 'तबादलाख्याल-ए-' शब्द गौरतलब है। नारी विषयक इन सारे ख्यालों को बदलना होगा जिनको नारी अस्मिता के खिलाफ इस्तेमाल किया जाता है मसलन नारी की बुद्धि तो उसके पैरों में होती है, नारी पैरों की जूती है, लड़की पराई अमानत है या लड़की या गाय को वहाँ जाना चाहिए जहाँ उसे पहुंचाया जाता है। इंदिरा नूरी सुनिता विलियम्स, कल्पना चावला, किरण बेदी, साइना नेहवाल, लज्जा गोस्वामी, अरुंधती राय, सुधा भारद्वाज मेधा पाटेकर....ये सब नाम तबादला-ए-ख्याल के लिए पर्याप्त रहेंगे।"[1]

1.3 <u>नारी विमर्श की परिभाषा :-</u>

नारीवाद राजनीतिक आंदोलनों के साथ विशिष्ट संबंध रखने वाली विचार प्रणाली है जिसमें पुरुषों की तुलना में स्त्रियों को दोयमता क्यों और कैसी प्राप्त हुई? इस बात का विश्लेषण तथा व्याख्या की जाती है। साथ ही

यह असंतुलन कैसे समाप्त किया जा सकता है? उसके लिए कौनसी-चुनौतियों को स्वीकार करना होगा? इस पर भी प्रकाश डाला जाता है।

नारीवाद एक प्रकार का धार्मिक आंदोलन है, जो वर्ग जाति और समुदाय के स्तरीकरण को चुनौती देता है । संप्रदाय के आधार पर वर्गीकरण के मिथक को तोड़ता है । वास्तव में यह एक प्रकार की अंतर्राष्ट्रीयता है और इसकी पहल वे स्त्रियाँ कर रही है जिनके लिए कहा जाता था कि गरीब, साधन हीन तथा अशिक्षित होने की वजह से वे संगठित होने की क्षमता नहीं रखती है।

भारतीय अर्थव्यवस्था में नारी बहुत ही महत्वपूर्ण मानी गई है। इसलिए सभी सुधीजन, सहित्यकार, पत्रकार कॉरपोरेट कर्मी, व्यवसायी इस मार्ग में अब जागरुक हो रहे हैं तथा विज्ञापन दाता, समाजसेवक, कार्यकर्ता, मीडिया, फिल्म आदि हर क्षेत्र में कई सदियों से पीछे धकेल दी गई शोषित-दमित स्त्री को केंद्र में लाकर, उस पर पुनः विचार करने की तैयारी हैं। स्त्री-विमर्श शब्द को सही ढंग से समझने के लिए इसे सर्वप्रथम दो भागों में विभाजित किया जाना अनिवार्य होगा। 'स्त्री' तथा 'विमर्श'। 'स्त्री' वैदिक संस्कृत शब्द है। 'ऋग्वेद' (४-६-७) में इसका सर्वप्रथम प्रयोग किया गया था। 'स्त्री' शब्द की व्युत्पत्ति के अनुसार 'स्त्री - सूत्री' जन्मदात्री अर्थात् वह परिवार की सूत्रधारक होने से स्त्री कही जाती है।

'स्त्री' शब्द 'स्त्यै' धातु से बना है जिसका अर्थ अक्सर लज्जायुक्त होना लिया जाता है। पाणिनी ने 'स्त्यै' का अर्थ शब्द 'करना' लिया है। पतंजलि ने कहा, 'नारी' को स्त्री इसलिए कहा जाता है कि गर्भ की स्थिति उसके भीतर होती है। उनकी एक दूसरी व्युत्पत्ति के अनुसार शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध का समुच्चय स्त्री है। पुरुष के ज्ञानेंद्रियों की तृप्ति नारी से होती है इसलिए उसे स्त्री कहा जाता है। भोलानाथ तिवारी जी के अनुसार "स्त्री के लिए प्रयुक्त होने वाले शब्द ' अबला 'औरत, इस्तिरी, कबीला, कलत्र, कांता, कामिनी, क्षेत्र,

गृहिणी, धरणी, चरणदासी, चोषा, जनियां, जाबी, जोय, जोरू, जोतिषा, तन तिय, तिरिया, तीदार, तीथ, त्रिया, दारा, नारी, प्रति, पदार्शिनी, वनिता, बर्ना, बाला, बैथर, भामा, भामिनी, महिला, मादा, मानवी, योषा, योषिता, ललना, लुगाई, वसिता, श्यामा, सारंग, हैं।

अंग्रेजी में 'स्त्री' का पर्यायवाची शब्द 'वूमन' (women) या (female) बताया गया है। हिंदी में विमर्श के लिए कई समानार्थी शब्द विचार, विवेचन, परीक्षण, समीक्षा, तर्क आदि प्रस्तुत किये गए हैं तथा प्रख्यात आलोचक नामवर सिंह के शब्दों में 'विमर्श' हिंदी में मिशेल के 'डिस्कोर्स ' का अनुवाद है। वास्तव में 'स्त्री विमर्श' का सामान्य अर्थ स्त्री के संदर्भ में विमर्श, विचार, विनिमय आदि करना माना जाता है। 'एक दूसरा अर्थ इस रूप में लगाया जा सकता है "स्त्रियों के विषय में विचार, एवं चिंतन करना। इसका तीसरा अर्थ "स्त्री का, स्त्री के लिए, स्त्री द्वारा लिखा गया, लेखन ही स्त्री विमर्श है। लेकिन रेखा कस्तवार का मानना है कि इसे स्त्री तक सीमित करने से जहाँ पुरुष स्त्री विषय से बाहर का व्यक्ति हो जाता है, वही स्त्री भी स्त्री विषय तक सीमित हो जाती है। एक तरह से यह विचार सही नहीं है क्योंकि स्त्री द्वारा लिखी गयी हर रचना को स्त्री विमर्श की परिधि में नहीं रखा जा सकता। स्त्री विमर्श पर ज़ोर देते हुए चर्चित रचनाकार तस्लीमा नसरीन साफ शब्दों में कहती हैं कि "हमारा विरोध पुरुष जाति से नहीं है, विरोध है पुरुष की उस सामंती मनोवृत्ति से, जो नारी को दासी से अधिक दर्जा नहीं देती।"[2] वहीं आशारानी व्होरा जी का मानना है कि, "अधिकारों की मांग नहीं, अधिकारों का अर्जन ही वह लक्ष्य है, जिसके लिए हमें अपने आपसे और अपने बाहर दो मोर्चों पर दोहरा संघर्ष करना है। यह संघर्ष जितना तीव्र होगा, जीत उतनी ही सुनिश्चित होगी।"[3]

1.4 स्त्री विमर्श का स्वरूप :-

पितृसत्तात्मक व्यवस्था में नारी संपत्ति, उपभोग और विलास का प्रतीक मानी गयी है। पुरुष वर्चस्ववादी की ओर संकेत करते हुए फ्रेडरिक एंगेल्स ने कहा है कि "अब घर के अंदर भी पुरूष ने अपना आधिपत्य जमा लिया है। नारी पदच्युत कर दी गयी। वह पुरुष की वासना की दासी, संतान उत्पन्न करने का एक यंत्र मात्र बनकर रह गई। बाद में धीरे-धीरे, तरह-तरह के आवरणों से ढककर, सजाकर और आंशिक रूप में थोड़ी नरम शक्ल देकर पेश किया जाने लगा, पर वह कभी दूर नहीं हुई।"[4] इसका मुख्य कारण वे मातृसत्ता का विनाश मानते हैं जो नारी जाति की विश्व ऐतिहासिक पराजय है। आज के संदर्भ में कहा जाए तो अभी बहुत कुछ बदलने की जरूरत है ।

1.5 आदिकालीन नारी : -

नारी विमर्श शब्द अपने व्यापक अर्थों में हमें नारी अस्मिता का बोध कराता हुआ प्रतीत होता है एवं नारी सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक, राजनीतिक परिप्रेक्ष्यों को अपने में संजोए हुए समाज, संस्कृति और साहित्य में निर्दिष्ट पुरातन के शिव पक्ष की स्थापना करती है। नारी अपने 'स्व' की प्रतिष्ठा की कामना करती है। यद्यपि प्राच्यकाल से ही भारत में स्त्रियों नें विभिन्न क्षेत्रों में कई सराहनीय कार्य किये हैं। हमारे प्राचीन महाकाव्य महाभारत एवं रामायण के प्रसंग में द्रौपदी ने दु:शासन से और सीता ने रावण से संघर्ष किया है । इस आधुनिक युग में भी उनका संघर्ष निरंतर चल रहा है जो आज भी थमा नहीं है वह आज भी संघर्ष कर रही है। भारत में नारी चेतना की लहर तब से पैदा हुई थी जब से पश्चिम में सोचा भी नहीं जाता था। आज से हजारों वर्ष पूर्व दसवीं शताब्दी ईसा पूर्व बौद्ध दर्शन का अभ्युदय हुआ था और महात्मा बुद्ध के द्वितीय संघ में स्त्रियों को शामिल होने का एक क्रांतिकारी अधिकार मिला था जो स्त्रियाँ इस धर्म में शामिल होती थी उन्हें

थेरी नाम से सम्बोधित किया जाता था। आदिकाल में नारी पुरुष की उसी तरह सामग्री थी जैसे गाय, बैल, खेतीबा-री, पुरुष को अधिकार था नारी को बेचे, गिरवी रखे या मार डाले । विवाह की प्रथा उस समय केवल यह थी कि वर पक्ष अपने सुर-सामंतों को लेकर सशस्त्र आता था और जो कुछ उसके हाथ लग जाता था। उसे भी उठा ले जाता था वह नारी को अपने घर ले जाकर उसके पैरों में बेड़ियां डाल कर घर के अंदर बंद कर देता था । उसके आत्म-सम्मान के भावों को मिटाने के लिए यह उपदेश दिया जाता था कि पुरुष ही उसका देवता है । सुहाग नारी की सबसे बड़ी विभूति है, आज कई हजार वर्षों के बीतने पर भी पुरुष के मनोभावों में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया । पुरानी सभी प्रथाएं कुछ विकृत रूप में समाज में आज भी मौजूद है। हिंदी साहित्य की एक लेखिका चंद्रकांता जी मानती हैं कि “नारी विमर्श तो उसी समय शुरू हो गया था जब रामायण में सीता प्रतिकार में धरती को समर्पित हो जाती है इससे ज्यादा वह और क्या विरोध कर सकती थी।"[5]

भारतीय जनमानस में सर्वविदित है कि भारतीयों के सभी आदर्श नारी रूप में पाए जाते थे जैसे विद्या का आदर्श 'सरस्वती' में, धन का 'लक्ष्मी' में, शक्ति का 'दुर्गा' में, सौंदर्य का 'रति' में, पवित्रता का 'गंगा' में, इतना ही नहीं सर्वव्यापी ईश्वर को भी ‘जगत्-जननी’ के नाम से सुशोभित किया गया है । नारी में समस्त देवताओं की सम्मिलित शक्ति के समतुल्य बल माने गए है । इस युग में चाहे घर हो या परिवार हर जगह नारी की स्थिति बहुत अच्छी नहीं कही जा सकती है । घर के बाहर तथा घर के अंदर अपने ही नोचने के लिए हमेशा ताक में रहते हैं। कई लोगों का मानना है कि वैदिक युग में भारत वर्ष में नारी को यथोपयुक्त सम्मान या मर्यादा दी जाती थी। इस्लाम के आविर्भाव के बाद वह मर्यादा अचानक लुप्त हो गई। परन्तु मैं इसे मानने को तैयार नहीं । ब्राह्मण संहिता, आख्यानक, उपनिषद और सूत्र साहित्य ही मुख्य रूप से वैदिक साहित्य हैं। ईसा पूर्व 12 वीं से ईसा की चौथी शताब्दी के बीच रचित

साहित्य द्वारा समाज का जो चित्र उभर कर सामने आता है उसमें नारी को कहीं भी मनुष्य नहीं समझा गया अर्थात नारी का शोषण बदस्तूर आज भी जारी रहा है ।

1.6 मध्यकालीन नारी -:

18 वीं शताब्दी में होने वाले औद्योगिक क्रांति में इस आंदोलन की शुरुआत का श्रेय ब्रिटेन और अमेरिका को गया। जिसे 1848ई. में कैंडी लुक्रेसिया, स्टेटन जैसी महिलाओं ने आगे बढ़कर सर्वप्रथम 1920 ई. में वोट डालने का अधिकार प्राप्त किया। कई सदियों के पश्चात पुरुष प्रधान समाज से महिला समाज को मुक्त कराने वाले महान समाज सुधारक दंपत्ति ज्योतिबा फुले और उनकी पत्नी सावित्रीबाई फुले ने अंग्रेजी उपनिवेशवाद में उन्हें अज्ञानता रूपी अन्धकार से बाहर निकाला। यह अन्धकार कब, कैसे और क्यों आया? इसका कारण जानने हेतु हमें उस समय के लिपि ग्रंथों एवं परंपराओं का अध्ययन करना होगा क्योंकि, हमारा धर्म ही हमारा नियामक माना जाता था इस आधार पर कहा जा सकता है कि, उनके अधिकार में पतन होना शुरू हो चुका था जिसे कई महिला लेखिकाओं ने स्वीकार किया है ।

हिंदी साहित्य में मीराबाई के पश्चात अगर किसी नारी का विद्रोही स्वर हमें सुनाई देता है तो वह है एक अज्ञात हिंदू-महिला ये विधवाओं पर होने वाले अत्याचारों के खिलाफ खड़ी है तथा वह आज भी नारी विरोधी परंपराओं को समाप्त करने में प्रयासरत है और व्यंग्य के माध्यम से समाज को मुंहतोड़ जवाब भी देती है शास्त्रों के अनुसार यदि स्त्री -पुरुष दोनों की उत्पत्ति ब्रह्मा से हुई है तो यह कैसा इंसाफ है कि आधा जिस्म मर्द का औरत के मरने पर दूसरी शादी कर सके और आधा जिस्म औरत का शादी के बगैर जेल खाने में मार दिया जाए । ऐसी बात पुरुष मानसिकता पर शत-प्रतिशत

सच बैठती है। आज भी सवर्ण समाज में ऐसा ही दिखाई देता है लेकिन श्यौराज सिंह बैचेन कि आत्मकथा में बताया है कि दलित समाज में सभी को आजादी है । शादी एवं पुनर्विवाह करने की पूरी छूट होती थी क्योंकि, पुरुषवादी समाज आजादी देने के पक्ष में नहीं है ।

धर्मपाल के अनुसार निजी स्वार्थवश तथा निजी वर्चस्व बनाए रखने के लिए पुरुष ने अधिकतर नारी को स्वयं से हीनतर स्थापित किया। यही कारण है कि समूचे विश्व के पुरुष समान सोच रखते आए हैं। वेद - ऋषि, मुनि अवतार अथवा पुरुष सभी ने नारी की भर्त्सना की, उसमें अवगुण देखे और स्वयं को सर्वश्रेष्ठ जताने की गाथाएं लिखी और यह पक्षपातपूर्ण विचारधारा नारी को हीनतर करने में सफल हुई और नारी आज भी इन षड्यन्त्र की शिकार है। यह कहना ग़लत नही होगा कि नारी की अपनी अस्मिता को लेकर संघर्ष आज भी निरंतर जारी है और जिसमें हिन्दी कथा-साहित्य जगत की लेखिकाएँ आज भी बढ़-चढ़ कर हिस्सा ले रही हैं। हिन्दी कथासाहित्य में - नारी-विमर्श जिसमें स्त्री जीवन की हमें अनेक समस्याएं देखने को मिलती है तथा हिन्दी साहित्य में आदिकाल से ही नारीविमर्श का जन्म माना जाता- रहा है। जिसमें महादेवी वर्मा की 'श्रृंखला की कड़ियाँ' नारी सशक्तिकरण का बहुत ही सुन्दर उदाहरण है। प्रेमचंद से लेकर आज तक अनेक पुरूष लेखकों ने नारी समस्या को अपने लेखन का विषय बनाया परन्तु उस रूप में नहीं रचा जिस रूप में स्वयं महिला लेखिकाओं ने प्रस्तुत की है। अतः नारी - विमर्श की शुरूआत की गुंज हमें पश्चिम में देखने को मिली। सन 1848 ई. के आस-पास नारी सशक्तिकरण शुरू हुआ और सन 1960 तक जोर पकड़ा जिसमें लेखिकाओं के कई नाम बहु चर्चित रहे हैं उसमें उषा प्रियम्वदा, कृष्णा सोबती, मन्नू भण्डारी एवं शिवानी आदि लेखिकाओं ने नारी मन के अंतर्द्वंद एवं उनकी आप बीती घटनाओं को उकेरना आरम्भ किया और आज हिन्दी कथा-सहित्य जगत् में नारी-विमर्श एक ज्वलंत मुद्दा है।

1. 7आधुनिक नारी -:

प्रस्तुत शोधग्रंथ के इस प्रथम अध्याय के अंतर्गत श्यौराज सिंह बेचैन कि रचनोंओं के माध्यम से हमने स्त्री विमर्श को दर्शाने का प्रयास किया है । महाराष्ट्र के पुणे शहर में 'फुले' जी की पत्नी सावित्रीबाई फुले ने 15 मई 1848 में अछूत बस्ती में बाल-बालिका विद्यालय खोल दिया था । ज्योतिबा फुले के मित्र 'उस्मान शेख' की बहन 'फातिमा शेख' ने इस महान कार्य में योगदान दिया था । जिसके योगदान को आज की नारीवादी लेखिका प्राय: अनसुना करती है। सन 1863 में 'फुले' द्वारा स्थापित 'बाल हत्या प्रतिबंधक गृह' की जिम्मेदारी सावित्रीबाई फुले ने संभाली थी । यह वही सावित्रीबाई फुले थी जो महिलाओं को जब अक्षर ज्ञान कराने के लिए घर से बाहर जाती थी तो साथ में एक अतिरिक्त साड़ी साथ में रखती थी ऐसा इसलिए क्योंकि, वे महिलाओंको शिक्षित करना बंद कर दें। फुले के बाद और आंबेडकर के पूर्व दलित 'शिवराय जानवाला कांबले' और उनकी पत्नी 'मीना' ने अपने समाचार पत्रो में स्त्री के संदर्भ में काफी कुछ लिखा है । विशेष कर उन्होंने देवदासियों की मूक पीड़ा को वाणी दिया था लेकिन दक्षिण भारत में मौजूद देवदासी प्रथा की शुरूआत के बारे में बहराहाइची का कहना है कि, "देवदासी प्रथा उसी जुल्म व अत्याचार की एक बड़ी कड़ी है। जिसे 'मनु स्मृति' को मानने वालों ने आरंभ में जुल्म अत्याचार करके दासियों को मजबूर किया होगा"।[6]

8 मार्च, 1860 को पुणे में हुआ पहला विधवा विवाह सावित्रीबाई फुले ने संपन्न करवाया था । उस समय न्यायमूर्ति गोविंद रानडे जैसे समाज सुधारक भी उनके कार्यों से झुक गये थे । बहिष्कृत भारत में बाबासाहब ने लिखा था कि देवताओं के उपरांत यदि कोई पूजनीय है तो वह महिलाएँ है फिर भी महाड़ सत्याग्रह के समय अस्पृष्य स्त्रियों को सवर्णों ने बेइज्जत करने के लिए काफी कुप्रयास किया था । डॉ. आंबेडकर की वैचारिक

परिकल्पना मुख्यत: 'हिन्दूकोडबिल' में मुखर हुई । जिसमें उन्होंने न केवल दलित महिलाओं को बल्कि संपूर्ण स्त्रियों के अधिकारों की रचनात्मक वकालत की । 'हिन्दूकोडबिल' को हम हिन्दू स्त्री मुक्ति घोषणापत्र भी कह सकते है जिसे वी.एन.राय की अथ्यक्षता में 'हिन्दूकोडबिल' को तैयार किया गया था। डॉ. आंबेडकर ने 'हिन्दूकोडबिल' के लिए हिन्दुओं के धर्मशास्त्रो, वेदों का वही आधार लिया था जिसमें स्त्री आदमी के ऊपर देवी न सही कम-से-कम समान इन्सान का दर्जा पा सके । यह बिल 11 अप्रैल, 1947 को सदन में पेश किया गया। आंबेडकर के शब्दो में "चार वर्ष जीने के बाद इसकी हत्या कर दी गई जिस पर किसी ने आँसू नहीं बहाये । पूरे एक वर्ष तक सरकार ने इसे सलेक्ट कमेटी को सौंपने की जरूरत महसूस नहीं की, इसे 9 अप्रैल 1948 को सौंपा गया । 1949 के फरवरी सत्र तक बहस की अनुमति नहीं दी गयी"।[7]

आठवें दशक तक आते-आते इस विषय ने एक आन्दोलन का रूप ले लिया जो शुरूआती नारी-विमर्श से ज्यादा प्रभावशाली सिद्ध हुआ तथा आज कौंशल पवार, कौशल्या बैसंत्री, मैत्रेयी पुष्पा तक आते-आते कथा सहित्य जगत में महिला लेखिकाओं की बाढ़ आ गयी है, जिसने पितृसत्तामक समाज को पूरी तरह से झकझोर दिया है तथा नारी मुक्ति की गुंज अब देह मुक्ति के रूप में प्रतीत होने लगी है। समाजिक सरोकारों से सम्पन्न बुद्धिजीवियों और कार्यकर्ताओं के बीच लंबे समय से यह निरन्तर चर्चा और चिंता का विषय बना रहा है जिसके कारण आज भी हिंदी में नारी प्रश्न पर मौलिक लेखन काफी कम मात्रा में मौजूद हैं तथा नारी विमर्श की सैद्धांतिक अवधारणाओं एवं साहित्य में प्रचलित नारी विमर्श की स्थापनाओं की भिन्नता के संदर्भ में पहला प्रश्न तो यह उठता है कि हिंदी साहित्य जगत में नारी विमर्श के क्या मायने हैं? जिसे साहित्य, कथा, कहानी, आलोचना, कविता इत्यादि मानवीय संवेदनाओं की वाहक विधा के रूप में लेखन के रूप में देखा जाता है वह

दलित, नारी, अल्पसंख्यक तथा अन्य हाशिए के विमर्शों को किस रूप में प्रस्तुत करता है? साहित्य अपने यथार्थवादी होने के दावे के बावजूद क्या नारी विमर्श की मूल अवधारणाओं को प्रस्तुति कर उस पर आम जन के बीच किसी किस्म की संवेदना को विकसित कर पाने में सफल हो सका है? नारी के प्रश्न केवल हाशिए के नहीं बल्कि ये जीवन धारा के केंद्रीय प्रश्न हैं किन्तु, हिंदी साहित्य की मुख्यधारा जिसे वर्चस्वशाली पुरुष लेखन का कहना भी कोई गलत नहीं होगा, जिनमें नारी प्रश्नों एवं मुद्दों की निरन्तर उपेक्षा की जाती आ रही है। इसका अर्थ यह नहीं है कि नारी प्रश्न सिरे से गायब हैं बल्कि इसका अर्थ यह है कि नारी की उपस्थिति या तो यौन वस्तु के रूप में है यदि वह संघर्ष भी कर रही हैं तो उसका संघर्ष बहुत हद तक पितृसत्तात्मक व्यवस्था के लिए होता है तथा संघर्ष करने वाली नारी की निर्मिति ही पितृसत्तात्मक रही है। साहित्य की पितृसत्तात्मक परंपरा में निरन्तर नारी प्रश्नों का केवल ह्रास होता हुआ ही क्यों प्रतीत हो रहा है? क्या नारी विमर्श को देह केंद्रित विमर्श के समतुल्य रखकर नारी-विमर्श चलाने के दायित्वों का निर्वाहन किया जा सकता है? यदि साहित्य का कोई सामाजिक दायित्व है तो हिंदी साहित्य में नारी विमर्श के नाम पर नारी देह को बेचने व नारी को सेक्सुअल आब्जेक्ट अथवा बाज़ार के उत्पाद के रूप में तब्दील कर दिए जाने की जो पूँजीवादी, पितृसत्तात्मक, बाजारवादी रणनीति कार्य कर रही है उस मानसिकता से यह समाज मुक्त क्यों नहीं है? उसको पूर्ण रूप से जान कर उसके सक्रिय प्रतिरोध से ही वास्तविक नारी विमर्श संभव हो सकता है।

साहित्य में महिला लेखन के रूप में उपलब्ध अलग-अलग कहानियों, कविताओं तथा आत्मकथाओं में नारी की शारिरिक पीड़ा से परे जाकर उसकी वर्गीय, जातीय एवं लैंगिक पीड़ा का वास्तविक स्वरूप परिलक्षित क्यों नहीं हो पा रहा है? नारी साहित्य के सवालों के मूल्यांकन के परिप्रेक्ष्य में भी हिंदी आलोचना में गैर-अकादमिक एवं उपेक्षापूर्ण रवैया आज भी क्यों देखने

को मिलता है? साठ के दशक में पुरुष वर्चस्ववाद की सामाजिक सत्ता और संस्कृति के विरुद्ध उठ खड़े हुए स्त्रियों के प्रबल इस सहित्यिक क्रान्तिकरी आंदोलन को नारीवादी आंदोलन के नाम से संबोधित किया गया। वस्तुतः नारीवादी आंदोलन एक राजनीतिक आंदोलन माना गया है जो नारी की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एंव दैहिक स्वतंत्रता का पक्षधर रहा है। नारी मुक्ति केवल नारी की मुक्ति का प्रश्न नहीं है बल्कि यह संपूर्ण मानवता की मुक्ति का अनिवार्य प्रश्न है। दरअसल यह स्त्रियों की अस्मिता की लड़ाई है। इतिहास ने यह साबित भी कर दिया है कि आधी आबादी के जागरुक हुए बगैर क्रांतियाँ पूरी तरह से सफल नहीं हो सकतीं अर्थात् सभी वर्णों का प्रतिनिधित्व होना ही भारत का सर्वांगीण विकास होगा ।

भारतीय राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान अपनी जातीय अस्मिता की पहचान के साथ-साथ नारी मुक्ति का स्वप्न भी जनता के द्वारा देखा जा रहा था तथा नव स्वतंत्र भारतीय राष्ट्र ने महिला आंदोलनों को यह विश्वास भी दिलाया था कि बड़े उद्देश्यों की प्राप्ति के पश्चात नारी-पुरुष संबंध, लैंगिक श्रम विभाजन, आर्थिक हिंसा जैसे मुद्दे अपने आप ही हल हो जाएँगे परंतु स्वतंत्रता के इतने वर्ष बीत जाने के बाद भी नारी सम्बन्धित प्रश्न ज्यों के त्यों आज भी बने हुए हैं? समाज में अभी भी भेदभाव, ऊँच-नीच, वर्ण, वर्ग, जाति आदि का वर्चस्व कायम है जिसमें सवर्ण लेखिकाएँ दलित पक्ष को अनसुना करती है ।

औरत पर आर्थिक, सामाजिक, यौन उत्पीड़न अपेक्षत: अधिक गहरे, व्यापक, निरंकुश और संगठित रूप से वर्तमान समय में भी कायम है तथा नारी आंदोलनों को इन सभी चुनौतियों में एक होकर संघर्ष करके ही अपनी मुक्ति पा सकती है । महिलाओं की समस्याएँ किसी रूप में अलग नहीं है जो वर्गीय, जातीय, नस्लीय आधार पर समाज में हो रही हिंसा एवं असमानता के प्रति निरन्तर संघर्षरत है । नारीवादी आंदोलनों की शैक्षणिक रणनीति के रूप

में नारी अध्ययन एक अकादमिक प्रयास है जो मानवता एवं जेंडर संवेदनशील समाज में विश्वास रखता है। यह समाज के प्रत्येक तबके के अनुभवों को केंद्र में रखकर ज्ञान के प्रति अपना नया दृष्टिकोण विकसित करने के लिए प्रतिबद्ध है जो सत्तामूलक ज्ञान की रूढ़ सीमाओं को पार करके ज्ञान को उसके विस्तृत रूप में प्रस्तुत करता है। विशेष तौर पर नारी विषयक मुद्दों के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक पक्षों पर अपनी राय रखते हुए जेंडर, समानता आधारित समाज के निर्माण की ओर वह निरन्तर अग्रसर है। अंतरविषयक अध्ययन होने के कारण यह अन्य विषयों के साथ-साथ ज्ञानात्मक संबंध भी स्थापित करता है और नारी प्रश्नों के प्रति अकादमिक जगत में अपनी जगह बनाने के लिए भी नारीवाद को पढ़ाया जाना बहुत जरूरी है बल्कि यह जरूरी नहीं कि उच्च शिक्षा संस्थानों में नारीवाद पढ़ने के बाद लोग नारीवादी बनें ही रहें परंतु इससे यह संभव हो सकेगा कि वह ज्ञान के नए क्षितिज के रूप में उसके बारे में भी जानकारी रखते हों।

नारी विमर्श के अकादमिक होने के पश्चात यह आरोप अक्सर लगते ही रहे हैं कि इसके कारण आंदोलनों का एक विशेष रूप में संस्थानीकरण हुआ है एवं लोग नारी मुद्दों को एक टेक्स्ट के रूप में इसको पढ़ने में रूचि लेने लगे हैं। बहुत हद तक यह सही भी कहा जा है परंतु धीरे-धीरे ही सही नारी अध्ययन परंपरागत ज्ञान की दुनिया में अपने लिए स्थान बना पाने में केवल सफल ही नहीं बल्कि एक नदी के रूप में निरन्तर धारा प्रवाहित हो रही है। इसे शैक्षिक संस्थाओं के उदारवादी चेहरे के रूप में भी हम देख सकते हैं। या यूँ कहें कि यह ब्राह्मणवादी पितृसत्तात्मक ज्ञान व्यवस्था की मजबूरी भी है कि वह इस किस्म के विमर्शों को महत्व प्रदान करे।

19 वीं सदी से लेकर अब तक भारतीय महिलाओं की सामाजिक हैसियत में सुधार लाने का प्रयास किया जा रहा है 19 वीं सदी का सामाजिक

माहौल नारी की स्थिति और प्रचलित मान्यताओं पर प्रश्नचिन्ह लगाता है । इस सदी में नारी विमर्श पर दो स्वर उठे जिनमें से 1882 में मराठी की ताराबाई शिंदे ने नारी पुरुष पर तुलना लिखी। दुनियाभर की नारी जाति का वास्तविक स्थिति पर विचार विमर्श करने का आवाहन इसमें है । नारी पुरुष की समानता पर बल देते हुए उन्होंने चेतावनी दी कि नारी को आप दरकिनार नहीं रख सकते। ताराबाई शिंदे ने लिंग भेद के आधार पर नारी पुरुष के अधिकारों में फर्क करने और दोहरे मापदंड बरतने के खिलाफ आवाज उठाई वह बारबार- पूछती है कि पुरुष अपने आप को स्त्रियों से इतना श्रेष्ठ क्यों समझता है? नारी की तुलना में वह खुद को इतना महान और बुद्धिमान क्यों मानता है? अगर इतने महान हो और हीरो थे तो अंग्रेजों के गुलाम कैसे बन गए?

अपनी आवाज को ताराबाई शिंदे की तरह ही महादेवी वर्मा भी नारी के अधिकारों के लिए निरन्तर लड़ती रही । उन्होंने नारी शिक्षा की जरूरत पर आवाज बुलंद की और खुद इस क्षेत्र में अक्सर कार्यरत भी रही उन्होंने गांधी जी की प्रेरणा से स्थापित प्रयाग महिला विद्यापीठ में रहते हुए और जन समूह में शिक्षा की ज्योति को दूर-दूर तक फ़ैलाया तथा शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार के संदर्भ में सुधार हो और उन्होने इस दूरदर्शिता और संकुचित दृष्टि पर खुलकर वार किया। इस पर वे लिखती है कि "जब- स्त्रियों को सुशिक्षित बनाने के लिए सुविधाएं देने की चर्चा चली तो बहुत से व्यक्ति अगुआ बनने को दौड़ पड़े थे यह कहना तो कठिन है इस प्रयत्न में कितना अंश अपनी ख्याति की इच्छा की थी और कितना केवल स्त्रियों के प्रति सहानुभूति का?"[8]

समाज में नारी और पुरुष दोनों को ही जन्म से बराबरी का हक प्राप्त है परंतु पुरुष के बाद नारी है वाली सोच ने नारी को हमेशा से दोयम दर्जा दे रखा है इस दोयम दर्जे की सोच ने नारी के मनोभावों को अक्सर कुरेदा है और अपने अधिकार के प्रति सजग होती हुई नारी ने जब कदम उठाया तो

नारी विमर्श का साहित्य हमारे सामने आया है । वस्तुतः यह कहा जा सकता है कि समकालीन नारी विमर्श नारी को अनुगामिनी से निकालकर सहभागिनी बनाने की तरफ़ निरन्तर अग्रसर है। नारी विमर्श एवं जागरूकता की सार्थकता वही है जहाँ अभी भी महिलाओं की अपनी कोई अभिव्यक्ति या पहचान नहीं है स्त्री को उन सभी स्थानों पर पहुंचना है जहाँ तक वह अभी नहीं पहुंच पायी है। सभी स्त्रियों की जागरूकता ही नारी विमर्श की उपयोगिता मानी जा सकती है वरना इसका कोई महत्त्व नहीं।

वर्तमान समय में सीता जैसी स्त्रियाँ हर जगह लड़ रही है वह लड़ाई रामायण काल से लेकर आज तक निरंतर चलती चली आ रही है। आज रावण अनेक रूपों में समाज में विद्यमान है वह प्रेमी, पति, पिता या भाई किसी भी रूप में हो सकता है। समाज सत्ता, धर्म और खाप के रूप में न जाने कितने रूपों में रावण का मुखौटा पहने महलों से लेकर झोपड़ों तक में अपना आसन जमाएं बैठे हैं। आज के युग में राम रहीम, आसाराम बापू, संत रामपाल, जैसी कपटी चरित्रहीन लोगों की वर्तमान में बिल्कुल कमी नहीं है जो महिलाओं की मान मर्यादा को भंग करने के लिए हमेशा तैयार बैठे रहते हैं।

महिला लेखिका क्राफ्ट ने कहा कि, "मैं यह नहीं कहती कि पुरुष के बदले नारी का वर्चस्व पुरुष पर स्थापित होना चाहिए। जरूरत तो इस बात की है कि नारी को स्वयं अपने बारे में सोचने विचारने एवं निर्णय लेने का अधिकार मिले।"[9] क्राफ्ट की यह आवाज दुनिया के विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक विचारधाराओं में पूरी तरह प्रतिध्वनित हुई । 19 वीं शताब्दी में जे.एस.मिल ने अपनी पुस्तक 'सब्जेक्शन ऑफ द वूमेन' में नारीवादी आंदोलन को समाज में लिंग आधारित समानता को दार्शनिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि देते हुए अपने विचार प्रस्तुत किये तथा इस संदर्भ में प्लेटो के विचारों को वे इस पुस्तक में प्रस्तुत करते हैं जिसमें नारी एवं पुरुष की

असमानता के विरुद्ध समानता का दृष्टिकोण उत्पन्न किया गया था । सन 1949 में प्रकाशित सीमोन द बउवा की पुस्तक 'द सेकंड सेक्स' नारी विभेद का पहला दार्शनिक ग्रन्थ हम मान सकते हैं जिसने देश दुनिया में हलचल पैदा कर दी थी। समाज में नारी-पुरुष दोनों को समान हक प्रदान किए गए हैं परंतु पुरुष की सोच में नारी हमेशा से दोयम दर्जे की रही है।

1.8 नारी विमर्श के क्षेत्र : -

आज के समय में रोटी कपड़ा और मकान के अलावा नारी ने अपने व्यक्तित्व विकास की भी मांग की और एक व्यक्ति के रूप में भी अपनी स्थापना के प्रयोग का प्रयत्न प्रारम्भ कर दी है और वह मां, बहन, पत्नी की बनी लीक से निकलकर बाजार, दफ्तर, अस्पताल, सेना, मीडिया, परिवहन, खेल आदि उद्योगों में अपना कीर्तिमान बहुत ही सफ़लता पूर्वक स्थापित करने लगी है तथा परिवार पर बढ़ते आर्थिक दबाव और समाज में विकसित होती प्रकृति के कारण भी नारी की स्थिति में भी परिवर्तन नज़र आया है और वह कामकाजी नारी के रूप में अवतरित हुई हैं जिसमें आज वह हर मोर्चे पर सफलता का उच्चतम शिखर प्राप्त कर रही हैं। भारत में उत्तर आधुनिकता का प्रवेश सर्वप्रथम हिंदी साहित्य में माना गया है साहित्य एवं भाषा के क्षेत्र में उत्तर आधुनिकता का केंद्रीय सिद्धांत देरिदा का विखंडनवाद है। ये विखंडनवाद का मूल अभिप्राय है कि किस प्रकार केंद्र की समस्याओं को उजागर कर हाशिए को केंद्र में लाने का सफल प्रयास किया गया है उनमें अस्मितावादी विमर्श, दलित विमर्श, नारी विमर्श तथा आदिवासी, थर्ड जेंडर, विमर्श प्रमुख रूप से निरन्तर चर्चा में रहे हैं। वक्त के साथ संघर्ष के स्वरूप में भी परिवर्तन आता रहा है बस नहीं बदली तो नारी के संघर्ष की प्रकृति। सीता ने रावण से संघर्ष किया परन्तु साथ ही राम के अन्याय को भी सहा। जबकि आज की नारी रावण और राम दोनों के साथ वैसा ही व्यवहार करने में सक्षम

है। जहाँ नारी सशक्तिकरण का सवाल है तो सामान्य अर्थ में कहा जा सकता है कि उसे शक्ति संपन्न बनाना अनिवार्य है जबकि व्यापक अर्थ में सत्ता प्रतिष्ठानों एवं जीवन के सभी क्षेत्रों में निर्णय लेने की स्वतंत्रता अर्थात् महिलाओं को पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर संविधानिक, राजनीतिक, शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में निर्णय लेने का अधिकार अवश्य ही दिया जाना चाहिए।

1.9 पितृसत्तात्मक व्यवस्था : -

पितृसत्तात्मक समाज में यह धारणा है कि पुत्र ही परिवार का उत्तराधिकारी होता है उसकी वंशबेल, संपत्ति का रखवाला एवं कुल का दीपक वही होता है तथा केवल पुत्र ही अंतिम संस्कार और पूर्वजों को पिंड दान कर सकता है। पुत्र की इसी लालसा ने पुत्रियों को कमतर बनाने का सबसे पहला कदम यही से उठाया गया है। यही कारण है कि हमारे देश में कन्या भ्रूण हत्याओ में निरंतर वृद्धि होती रही हैं। एक अनुमान के अनुसार भारतवर्ष में प्रति वर्ष पाँच लाख कन्या भ्रूणों की हत्या माँ के गर्भ में ही कर दी जाती है। जर्नल प्लोस अपने शोध में कहते है कि 2017 से 2030 के दरम्यान भारत में कुल 68 लाख बच्चियाँ जन्म ले नहीं पायेंगी । अरविंद जैन के अनुसार "सारी दुनिया की धरती और (नारी) देह यानी उत्पादन और पुनरुत्पादन के सभी साधनों पर मेरा सर्वाधिकार सुरक्षित रहेगा। धरती पर कब्जे के लिए उत्तराधिकार कानून और देह पर स्वामित्व के लिए विवाह संस्था की स्थापना मैंने बहुत सोच समझकर की है।"[10] पितृसत्ता जो पुरुष को सर्वोपरि मानता है यही समाज इस व्यवस्था को पालता-पोषता है। पितृसत्ता की महत्वपूर्ण परिभाषा गार्ड लर्नर ने अपने शब्दो में दी है कि, "पितृसत्ता परिवार में महिलाओं और बच्चों पर पुरुषों के सामाजिक वर्चस्व का विस्तार है। इसका अभिप्राय है कि पुरुषों का समाज के सभी महत्वपूर्ण सत्ता

प्रतिष्ठानों पर नियंत्रण रहता है और महिलाएं ऐसी सत्ता तक पहुंचने से वंचित रहती हैं।"[11] प्रेमचंद ने गुलामी के भीतर एक गुलामी देखी थी वह भी धर्म द्वारा पोषित पितृसत्तात्मक व्यवस्था में नारी की गुलामी जब समाज में गुलामी नहीं थी तब भी यह गुलाम थी । नारी अंग्रेजी राज्य में पराधीनता का दो स्तरों पर अनुभव करने लगी थी हिंदी में प्रेमचंद पहली बार उसके जातीय असंतोष के साथ उसके परिवारिक स्तर पर स्वाधीनता के दर्द को प्रभुत्व-वादी पुरुष सत्ता द्वारा कुचले जाते उसके आत्मसम्मान को पहचानना था। तभी तो नारी को सम्बोधित करते हुए प्रेमचंद जी को कहना पड़ा कि नारी पुरुष से श्रेष्ठ है।

यूरोप में महिलाओं की अच्छी परिस्थिति के पीछे उनके परंपरागत साहित्य पर संदेह व्यक्त करना रहा है तथा आज भारत में दलित नारी विमर्श की लगभग सभी महिलाएं प्राचीन ग्रंथों को ही अपनी दुर्गति का जिम्मेदार मानती रही है जिसमें कौशल्या बैसन्त्री, रजनी तिलक, अनीता भारती, डॉ. कुसुम मेधवाल, रजतरानी मीनू, तारा परमार, माधुरी छेड़ा, शुशीला टाकभौरे, गीताबाई गायकवाड़, शांता बाई सरोदे, तानुबाई काम्बले, लक्ष्मी नायक, सुलोचना डोगरे, कीर्ति पाटिल, तुलसी बनसौडे, शांताबाई आदि सैकड़ों नाम हैं जिन्होंने नारी मुक्ति की कमान अपने काव्यों में संभाला है।

1.10 धर्म की व्यवस्था : -

भारतीय समाज में नारी चाहे वह किसी भी वर्ग, धर्म, जाति अथवा संप्रदाय की हो समाज के प्रत्येक क्षेत्र में उसका शोषण अक्सर किया जाता है कहीं जाति के आधार पर तो कहीं असमानता के कारण यौन शोषण किया जाता है। पुरुष प्रधान समाज में उसकी शिनाख्त दूसरे दर्जे के नागरिक के रूप में होती है । आज भी वह अपने जायज़ अधिकारों तथा सामाजिक हैसियत से वंचित जीवन जीने के लिए बाध्य है हमारे सभ्य समाज में नैतिक

आचरण की दृष्टि से जो कार्य नारी के लिए अक्षम्य अपराध माना जाता है उसी कार्य को यदि पुरुष करे तो वह जायज है तथा समाज के ठेकेदारों द्वारा नारी को दिग्भ्रमित करने के लिए उसे भले ही गृह लक्ष्मी, जगत् जननी, अन्नपूर्णा, गृह देवी आदि विशेषणों से विभूषित अथवा सम्मानित किया जाता है परंतु वास्तव में उसकी स्थिति समाज में पुरुष की सेविका से अधिक और कुछ नहीं है।

सीमोन द बोउवा ने 'द सेकंड सेक्स' (नारी उपेक्षिता २०००) की भूमिका में एक नारीवादी के हवाले से यहाँ तक वर्णन किया गया है, "अब तक औरत के बारे में पुरुष ने जो कुछ भी रचा है उस पूरे पर शक किया जाना चाहिए क्योंकि लिखने वाला न्यायधीश और अपराधी दोनों ही है।"[12] इसलिए सिमोन आगे कहती है कि “हर समय में पुरुषों ने केवल अपनी संतुष्टि का यह कहकर प्रदर्शन किया है कि वह जगत का सर्जक है उन्होंने यहूदियों की प्रातः काल की प्रार्थना का उल्लेख भी किया है जिसमें वे कहते हैं " प्रभु तुम्हारी कृपा है कि तुमने मुझे अपनी इच्छा से गढ़ा है।"[13] भारतीय धर्म साहित्य में ही नहीं वरन कुरान में भी महिलाओं की आजादी पर पुरुष वर्ग को ही अड़चन माना जाता है तथा पुरुष वर्चस्व तो यहाँ तक मानता है कि खुदा की नजर में भी आदमी ही मुख्य है, औरत दोयम दर्जे की हकदार है, क्योंकि अल्लाह ने सबसे पहले आदम को पैदा किया और फिर आदम की तन्हाई को खत्म करने के लिए उसकी पसली से हौव्वा का जन्म हुआ। इसी के साथ इस्लाम धर्म की पुस्तक को भी नारी मुक्ति के लिए बाधक मानते हुए इसके कई उदाहरण पेश किए है। उनका मानना है कि "बहुत जल्द ही 'मकसू -दुल मोमेनिन' एवं इस तरह के कुचक्र में जलने वाली किताबों के छपने पर रोक न लगाई गई तो कौम एक कमजोरों और कंकालों से भरी कौम में तब्दील हो जाएगी और वर्तमान चिकित्सा व्यवस्था भी इस महामारी को रोक नहीं पाएगी।"[14] समाज को इस समस्या पर अवश्य विचार करना चाहिए।

मैत्रेयी पुष्पा ने 'धर्म और नारी' नामक लेख में लिखा है सच मानिए ऐसे धर्म शास्त्र से हमें घृणा होती है। धार्मिक ताकतों की चालबाजियों को हम समझ गए हैं, इसका मकसद समाज का हित करना नहीं लोगों की जिंदगी पर कब्जा करना है।...आहत घायल, शोषित, वंचित और कमजोरों के लिए किसी राहत में विश्वास न रखकर सजा सुनाने की जल्दबाजी की है और उसी से ताकतवरी का रुतबा गांठा है। हमें हजारों साल पीछे ले जाने का श्रेय पुरातन- पंथी धर्म के सिर जाता है जिसके चलते हिंदूमुस्लिम लड़ रहे हैं और - जीत से परे हम निरीह जनता क्षत-विक्षत होकर हाड़-मांस के लोथड़ों में तब्दील हो रही है। यही हाल सभी धर्मों के ग्रंथों में पाया जाता है।

शिवरानी देवी ने अपने पति के उस झूठ से सबसे ज्यादा दुखी एवं आहत हुई थी जिसमें उसने एक साथ दो स्त्रियों के जीवन को बर्बाद किया । पहली नारी वे स्वयं एवं दूसरी वह पहली पत्नी जिसकी मृत्यु की झूठी बात कहकर उनसे ब्याह रचाया गया। मुझे धोखा दिया जाता रहा कि पहली वाली मर गई है। मैं बोली मुझे आपसे ऐसी उम्मीद न थी कि आप झूठ बोलेंगे या आप बोले जिसको इंसान समझे कि जीवित है । वही जीवित है जिसे समझे मर गया, वह मर गया। जिस लेखक के बारे में कहा जाता है कि उसने अपनी कलम से नारी और दलित की आवाज को धार दी है उस व्यक्ति का यह सच है । एक स्थान पर शिवरानी देवी कहती हैं- "स्त्रियाँ जितने त्याग से काम कर सकती हैं, पुरुष नहीं कर सकते, परन्तु तब बच्चे आप ही पैदा कीजिएगा और घर के सब कामकाज आपको ही करने पड़ेंगे।"[15]

1.11 पूंजीवादी व्यवस्था : -

वर्तमान समय में जो भी सौंदर्य प्रतियोगिताएं देश एवं विदेश में आयोजित की जाती हैं उसका मूल उद्देश्य कंपनी अपने उत्पाद को लॉन्च करने के लिए ऐसी प्रतियोगिताओं का आयोजन करवाती है जिसमें

महिलाओं की आबरू को अर्धनग्न या कम कपड़ों में दिखाकर उसकी आबरु तथा उसकी अस्मिता को मंच पर तारतार कर के -प्रसारित किया जा सके तथा जिससे समाज में आज अश्लीलता का प्रचार-प्रसार बड़ी तेजी से हो रहा है । उसमें भी हमारे सिनेमा जगत के लोग बढ़-चढ़कर आग में घी डालने का काम बहुत ही तन्मयता से करते हैं। सिनेमा में तो अश्लीलता को दर्शकों के सामने खुलकर परोसा जाता है आज की नायिकाओं का चरित्र एवं व्यवहार ही उसका प्रमाण माना जा सकता है। जो कभीकभी समाचार- खबरों में हमें देखने को मिलता है।

टी. वी. चैनलों पर और समाज में तथा बड़े शहरों में भी हमें यही देखने को मिल रहा है कि नारी देह की नुमाइश करने में पीछे नहीं हटना चाहती है। संचार माध्यमों के जरिए देह को अपनी पहचान बनाए बैठी हैं। समाज में नारी सिगरेट, शराब पीती पुरुषों की बराबरी में लगातार दौड़ लगा रही है तो फिर नारीवादी आंदोलन को किस हद तक सफल माना जा सकता है? सत्ता की भाषा में और संस्कृति के नजरिए से नारी आज भी भोग विलास कि वस्तु बनी हुई है । शायद यही सोच रही तो नारी का आगे भी यही रूप दिखाई देगा। नारी मुक्ति आंदोलन अपनी व्यापकता में अन्य आंदोलनों को समाहित तो नहीं करता परन्तु उनके तंत्र को छेड़ता अवश्य है। प्रत्येक आंदोलन का अपना राजनीतिक आधार या जमीर होता है। मुक्ति का संदर्भ यदि समाज है तो स्वाभाविक है मानव मुक्ति ही प्राथमिकता में होगा। नारीवाद मार्क्सवाद से अलग होते हुए भी मार्क्सवाद के बिल्कुल निकट है दोनों का केंद्रीय मुद्दा श्रम है । दोनों यह स्वीकार करते हैं कि पूंजीवाद ने नारी तथा श्रम का शोषण किया है। जिसे उचित नहीं माना जा सकता है। आधुनिक भारत में पाश्चात्य प्रभाव नई शिक्षा, ज्ञान, विज्ञान के व्यापक प्रभाव में रूढ़ परंपराओं पर विचार और मंथन करके राजा राममोहन राय, ईश्वर चंद्र विद्यासागर, केशव चंद आदि ने सर्वप्रथम सुधारवादी आंदोलनों की नींव पर इन बुराइयों को सती प्रथा,

बाल विवाह, बाल हत्या,विधवा विवाह, जैसी कुरीतियों को दूर करने का बहुत ही सफ़ल अभियान चलाया। इसी धार को आगे बढ़ाने के लिए 'हिन्दूकोडबिल' लाया गया था लेकिन समाज के मठाधीशों एवं धर्माचार्यों को यह प्रस्ताव बर्दाश्त नहीं हुआ । नवजागरण कालीन सुधारवादी आंदोलन में सावित्रीबाई फुले, पंडित रमाबाई की विशेष भूमिका रही थी जो नारी को उनके अधिकार के लिए उन्हें पुरुष के बराबर हक दिलाने के लिए निरंतर अपने सम्पूर्ण जीवन में संघर्ष करती रही जो हमारे समाज के लिए एक प्रेरणास्रोत रही है।

साहित्य के समीक्षकों, साहित्यकारों, प्रकाण्ड विद्वान लेखकों ने समेकित रूप में यह तथ्य स्वीकार किया है कि कवि या शायर, कहानीकार, लेखक अपने युग के रचनाकार होते हैं। समकालीन कहानियों का मूल स्वर है साधारण आदमी के प्रति प्रतिबद्धता का सच्चाईयों से गहरा नाता होता है । हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा एवं सटीक उतरता है जिसमें उच्च चिंतन एवं स्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाईयों का प्रकाश हो जो हमारे भीतर गति, ऊर्जा, संघर्ष और बेचैनी पैदा कर दे । जो हमें कुछ कर गुजरने के लिए मजबूर करती है। नारी विमर्श से हमें उनके अंदर से हीनता के भाव को मिटाना होगा।

1.12 <u>महिलाओं के प्रति भेदभाव -:</u>

स्त्रियों में इतना आत्मविश्वास भरा जाए, जिससे उनमें सकारात्मक सोच को शिक्षा के द्वारा अधिक विकसित किया जा सके कि वह स्वयं आधारशिला बन जाए जैसे पी टी उषा, कर्णम मल्लेश्वरी, कल्पना चावला, सुधा चंदन, बछेंद्री पाल, अरुणिमा सिन्हा, साइना नेहवाल, सानिया मिर्जा, हिमादास, वन्दना कटारिया, पी. वी सिन्धु जैसी सुविख्यात नारियों ने कठिन कार्य करके देश एवं विदेश में अपना लोहा मनवाया है कि वह कमजोर दिल

कि नहीं बल्कि एक साहसी महिला है। जो हर चुनौती को सहर्ष स्वीकार कर लेती है और उसमें विजयी होती है। वर्तमान समय में तर्कशील स्त्रियों ने सदियों से पद दलित शोषित एवं विष के घूट पीकर जीवन जीने वाली नारी ने जबरदस्त अंगड़ाई ली और पराधीनता की हर बेड़ियों, कड़ियों के हर जोड़ को वह अब एक झटके में तोड़ रही है । और हर जगह अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही है। अगर विवेक पूर्ण रूप से देखा जाए तो हमारी महिलाएं आज भी जागरूक नहीं हैं उनके अंदर एक दुर्बलता विद्यमान है। वह रंग-बिरंगी तितली बनकर खेलना चाहती हैं जबकि पुरुष का स्वभाव है कि वह इन तितलियों के साथ खेलता है और जब मन भर जाता है तो वह उसे छोड़ कर कही और चला जाता है। जब तक हमारी महिलाओं में यह सजने संवरने की प्रवृत्ति में परिवर्तन नहीं आएगा तब तक उनका नव विकास होना असंभव ही नहीं मुश्किल भी है। जहाँ तक आत्मकथाओं का संदर्भ है 1915 से 1916 तक के (स्त्री दर्पण) पत्रिका के अंकों में धारावाहिक के रूप में प्रकाशित किसी महिला द्वारा लिखित 'सरला एक विधवा की आत्मजीवनी' हिंदी की पहली आत्मकथा है जो एक महिला की आत्मकथा है जिसे 'दु:खिनी बाला' नाम से लिखा गया था। इसके बाद मीरा, सीमंतनी उपदेश आदि ने अपनी अनुभूतियों को प्रस्तुत किया। जो आगे चलकर आंदोलन का पथ-प्रदर्शक बना।

1.13 <u>देह से मुक्ति : -</u>

राजेंद्र यादव की मान्यता है कि नारी की एकमात्र योग्यता उसकी खुद की देह है उसी को लेकर भाषा के सारे सौंदर्य मूलक शब्द है तो उसी के वीभत्सम गालियाँ भी है। वे नारी संघर्ष के दो धारदार अस्त्र मानते हैं, देह के साथ देह की भाषा। "उसके पास कुछ ना हो मगर देह और मन तो उसके अपने हैं। उन्हीं को लेकर अपने फैसले ही उसे मुक्ति की नदी की राह दिखाएंगे.....क्योंकि.... सुंदर और स्वतंत्र नारी पुरुष के लिए चुनौती है।"[16]

आज नारी की अस्मिता पर दो तरफ़ा हमले हो रहे हैं। इनमें उसकी नारी चेतना और उसकी देह, दो बड़े मोर्चे रहे हैं। नारी की चेतना और देह दोनों के साथ नीची एवं कुन्द मानसिकता वाले समाज ने एक पशु की तरह आचरण किया है तथा इनको अपनी भौतिक आवश्यकताओं से बांधे रखने में ही समाज ने अपनी सफलता अर्थात बहुत बड़ी उपलब्धि मानी है अथवा नारी की देह का जो विमर्श है वह पुरुष के लिए केवल कौतुक क्रीड़ा का केंद्र रहा है तथा पूंजीवादी व्यवस्था ने अब सब कुछ व्यापार के रूप में तब्दील कर दिया है । व्यवसाय की चाल सारी संवेदनाओ के ऊपर बहुत भारी पड़ रही है और यही सारी फसाद की जड़ भी है ।

नारी की आत्मकथा अपनी आत्मकथाओं की ऐसी दास्तान है जो घर-घर में घटित होती है पुरुषों की आत्मकथाएँ उनके निजी संघर्षों की विजय गाथाएं हैं.... मगर नारी की आत्मकथा समाज और परिवार की उन भीतरी सच्चाईयों से उसे हमारा साक्षात्कार है जिनकी चुभन जूते की कील की तरह सिर्फ पहनने वाला ही जानता है। भारतीय समाज में परंपरा से शोषण को अपनी नियति मान बैठी आधी आजादी द्वारा इस शोषण को पहचानना और उससे छुटकारा पाना ही नारी विमर्श का प्रमुख उद्देश्य है। स्त्रियों में दलित नारी, एक तो नारी होने के कारण दूसरे दलित नारी होने के कारण दोहरे शोषण की शिकार होती रहती है तथा स्त्रियों का संघर्ष वहीं से शुरू होता है जहाँ से इनका शोषण शुरू होता है क्योंकि इतिहास लेखन हमेशा से पुरुष लेखक करता आया है इसलिए वह स्त्रियों और दलितों को इतिहास में खलनायक बनाकर अपना एक छत्र शासन करता रहा है जिसे अब महिलाएं अस्वीकार करने लगी हैं। इसलिए राधाबाई बड़ाले ने 1945 में आयोजित तीसरे 'अखिल भारतीय दलित महिला सम्मेलन' में मांग रखी कि- हमें मंदिरों में जाने का, पनघट में पानी भरने का अधिकार मिलना चाहिए । यह हमारा सामाजिक हक है । शासन करने का राजनीतिक अधिकार भी हमें मिलना

चाहिए। हम कठोर सजा की चिंता नहीं करती । देश की जेलों को भर देंगे । हम लाठी, गोली खाएंगे हमें हमारा हक चाहिए। योद्धा कभी अपनी जान की चिंता नहीं करता। गुलामी की जिंदगी से मृत्यु बेहतर है । हम अपनी जान दे देंगे मगर अधिकार छीन कर रहेंगे ।

1.14 श्रम विभाजन : -

भारतीय आर्थिक व्यवस्था की मजबूती के लिए खेतों में रोपाई, निराई, कटाई, बोझ की ढुलाई, पिटाई इत्यादि काम दलित महिलाएं करती आ रही हैं। घरों और गली की सफाई और शहर की सफाई का काम उन्हीं को सौपा हुआ है। गाय-भैंस के लिए घास काटना, घोड़ा गाड़ी के लिए घास काटना, घर से खलिहान और खेत तक गोद में बच्चा सिर पर गठरी ढोते हुए हम और आप प्राय: देखते हैं शहरों में बड़ी-बड़ी इमारतों के निर्माण स्थल पर दलितों और महिलाओं के विकराल रूप को भी हम देख सकते है जहाँ ना तो उनके खाने-पीने का कोई बंदोबस्त होता है ना तो कोई सोने का। इस प्रकार घर के अंदर और घर के बाहर दोनों की जिम्मेदारी एक दलित महिला बखूबी निभाती है और बच्चों के पालन- पोषण का काम अलग से करती है तथा दूसरों के घरों की सफाई, गोबर उठाना, गोबर पाथना एवं खेती-बाड़ी के काम पर जाते समय ये मासूम महिलाएं दरिंदों द्वारा हवस का शिकार भी बना ली जाती है । कभीकभी तो- नग्न करके गांव में भी इन्हें घुमाया जाता है जैसे फूलन देवी, निर्भया काण्ड, हाथरस काण्ड जैसी तमाम घटनाएँ महिलाओं के साथ अमानवीय व्यवहार आज भी हमें देखने और सुनने को मिल जाते हैं।

एच. एल. दुसाध के अनुसार "वास्तव में हिन्दू शास्त्रों और आंचल में दूध और आंखों में पानी कहकर भारतीय महिलाओं को गौरवान्वित करने वाले कवियों ने नारियों की जो अबला छवि निर्मित हुई है उसे जिस ऐतिहासिक अंदाज में एक दलित की बेटी ने ध्वस्त किया है।"[17] मैरीकाम, हिमादास (5 स्वर्ण), वन्दना कटारिया, पी. टी. उषा, बॉडी बिल्डर प्रिया सिंह

जैसी महिलाओं ने देश दुनिया में भारत का बहुत मान बढ़ाया है तथा भारत को गौरवान्वित किया है । भारतीय समाज में दलित महिलाओं के लिए शिक्षा, जागरूकता, रोजी-रोटी की समस्या ने समाज को आगे बढ़ने से रोक लिया है । लेखक ने इसका आगे कारण स्पष्ट करते हुए रचा है--"चूंकि भारत की प्रगतिशील नारियाँ ना तो हिन्दू देवी-देवताओं के भय से मुक्त हैं न ही शास्त्र विरोधी मानसिकता से पुष्ट इसलिए फुले, पेरियार आंबेडकर की भांति हिंदू देवी-देवताओं और शास्त्रों के विरुद्ध चेतना का प्रचार करने वाले दलित की बेटी को अपना आदर्श मानने में उन्हें असुविधा होती है।"[18] जब तक यह असुविधा समाज में बनी रहेगी वास्तविक नारी विमर्श अपने लक्ष्य को बिल्कुल भी प्राप्त नहीं कर पाएगा ऐसा हमारा मानना है। एक नारी द्वारा नारी अधिकारों को सर्वप्रथम वाणी देने में महिला लेखिका का विशेष उल्लेखनीय योगदान है। बंग महिला ने 'दुलाईवाली' कहानी में नारी यातना, संघर्ष और मुक्ति को वाणी प्रदान करने की कोशिश की थी परन्तु, बंग महिला के इस प्रयास को महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा रामचंद्र शुक्ल जैसे दिग्गजों के द्वारा इनकी असहमति तथा विरोध का सामना निरंतर करना पड़ा था। महादेवी वर्मा की 'श्रृंखला की कड़ियां' नारी गुलामी की कड़ियां मानी जाती है प्रोफ़ेसर मैनेजर पांडे ने 'श्रृंखला की कड़ियां' का महत्व बताते हुए यह कहा है कि-- "ऐसा लगता है कि नारीवादी और अन्य लेखिकाएँ भी श्रृंखला की कड़ियाँ के महत्व से पूरी तरह परिचित नहीं है । वे 'सिमोन-द-बोउआ' की किताब पढ़ती है परन्तु महादेवी वर्मा की 'श्रृंखला की कड़ियाँ' नहीं क्योंकि वह हिंदी में लिखी गई है फ्रेंच या अंग्रेजी में नहीं ।"[19] आज देश में हिंदी की बजाय अंग्रेजी का वर्चस्व बढ़ता चला जा रहा है ऐसा खुद ही हिंदी पढ़ने वाले कहते करते सुने जाते हैं। छठे दशक से कई नारी लेखिकाओं की दस्तक के साथ नारी लेखन में मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा, राजी सेठ, मृदुला गर्ग, ममता कालिया, चित्रा मुद्गल, सुधा अरोड़ा, सूर्यबाला, अर्चना वर्मा, प्रभा

खेतान, मैत्रेयी पुष्पा, नासिरा शर्मा, अलका सरावगी, जैसी महिला लिखिकाओं की एक पूरी जमात ने पुरुष लेखकों को चुनौती दी तथा उन्होंने अपना भाग्य खुद से लिखने का बीड़ा उठाया । तथा इन लेखिकाओं के लेखन से यह बात सामने आयी कि नारी के बारे में नारी द्वारा लिखी बात जितनी प्रमाणिक तथा विश्वसनीय होती है उतनी पुरुषों द्वारा लिखी बात नहीं, क्योंकि भारतीय साहित्य का एक वर्ग सिर्फ सहानुभूति के माध्यम से लेखन के क्षेत्र में कार्य करता है इसलिए वह स्व-अनुभूति को महत्व प्रदान नहीं करता। इसी तरह की बातें दलित लेखिकाओं का आरोप सवर्ण लेखिकाओं के बारे में लगती है।

प्रभा खेतान जी लिखती है कि "स्त्री की मुक्ति की चर्चा करने वाला पुरुष अपनी तमाम हमदर्दी नेक इरादे तथा अथक प्रयासों के बावजूद वर्णन में स्वयं कोई नारी का प्रतिनिधि बनाता चला जाता है। इस प्रकार नारी स्वयं अपना प्रतिनिधित्व स्वयं ही करने के अवसर तथा अधिकारों से वंचित रह जाती है।"[20] इस बात की तहकीकात आप भारतीय समाज में आज भी शत्-प्रतिशत देखकर महसूस कर सकते हैं। जिस बात को सिमोन द बउवा की बात से प्रमाणित किया जा सकता है।

आधी आबादी की मुक्ति के लिए प्रेमचंद जी ने अपने साहित्य में जगह-जगह पर प्रभावशाली आवाज उठाई है तथा नारी के व्यक्तित्व की चर्चा करते हुए उन्होंने उसे एक व्यक्ति के रूप में देखा और पहचाना है तथा बिना संकोच के इस सत्य को भी स्वीकार किया है कि स्त्री पुरुष से उतनी ही श्रेष्ठ है जितना प्रकाश अंधेरे से। इसी कारण प्रेमचंद के अधिकतर नारी पात्र पुरुष पात्रों से महान लगते हैं। उनकी स्पष्ट मान्यता है कि पुरुष में थोड़ी पशुता भी होती है जिसे इरादा करने पर भी हटा नहीं सकता। वह पशुता उसे पुरुष बनाती है विकास के क्रम में वह नारी से पीछे है। जिस दिन वह पूर्ण विकास तक पहुंचेगा वह भी नारी हो जाएगा। वात्सल्य, स्नेह, कोमलता, दया इन्हीं

आधारों पर सृष्टि थमी हुई है और यह स्त्रियों के गुण हैं। कोरोना के दौरान एक लेडीज डॉक्टर ने अपने मरीज के नवजात शिशु को स्वयं अपना दूध पिलाती हुई मीडिया में छाई रही। प्राय: दलित साहित्यकारों द्वारा यह आरोप लगाया जाता है कि सवर्ण लेखिकाएँ समाज की वास्तविक समस्याओं पर लेखन एवं चर्चा नहीं करती है बल्कि, अपनी जरूरतों पर बात करती है । वे तो अपने लिए ही सुविधाओं, अधिकारों का अंबार लगाना चाहती है। उसी के लिए वे सेमिनार के साथ -साथ आंदोलन भी करती हैं। वे श्रमजीवी नारी की पीड़ा को कभी अनुभव नहीं करती हैं । कर्मकार नारी सवेरे 6:00 बजे गोद में बच्चा लेकर 7:00 बजे संध्या समय घर लौटती है और शराबी पति की मार भी खाती है। जिसे देखकर करुणा को भी करुणा आए बिना नहीं रहती। परन्तु आज विमर्श की चर्चा में ऐसी महिलाओं पर मुश्किल से ही बहस हो पाती है अथवा प्रत्येक स्थान पर केंद्र बिंदु शिक्षित नारी ही होती है। वे सन्त कवयित्री मीरा जयंती मनाती थी । ये सभी गतिविधियां नारी जागरण का अभियान थी । वह चाहती थी कि नारी को अर्थ संबंधी वे सुविधाएँ प्राप्त हो सके। जो पुरुषों को मिलती आ रही है तो ना उनका जीवन उनके निष्ठुर कटुम्बियों के लिए भार बन सकेगा । वे स्त्री या महिला को स्वावलंबी बनाना चाहती है। वे हिन्दी की प्रमुख कवयित्री ही नही महत्वपूर्ण गद्यकार और विचारक, चित्रकार, संपादक, अनुवादक, शिक्षक और सक्रिय राजनीतिक कार्यकर्ता रही है। भारतीय नारी के जीवन की समस्याओं, पराधीनता और उससे मुक्ति की आकांक्षा के लिए वे जीवन भर लड़ती रही यह काम उन्होंने दो स्तरों पर किया। पहला लेखन के स्तर पर और दूसरा जीवन व्यवहार के स्तर पर उनके लेखन के बाद से हिंदी में बड़े पैमाने पर स्त्रियों के लेखन का विकास हुआ । नारी विमर्श के मूल में भी उनकी पुस्तक 'श्रृंखला की कड़ियां' रही है। जो नारी के लिए एक दर्पण से कम नहीं है।

श्यौराज सिंह बेचैन आगे इन कई नाम के माध्यम से स्त्री विमर्श की आवाज को उठाने का प्रयास अपने साहित्य में करते है कि, पिछले एक दशक में सुशीला टाकभौरे, विमल खांडेकर, कौशल्या बैसंत्री, रजत रानी (मीनू), रजनी तिलक, बेबी हलधर, तारा परमार, कुसुम मेघवाल, कावेरी आदि दलित लेखिकाओं ने दलित समाज की पितृसत्तात्मक शोषण एवं तत्जनित नारी की दयनीय स्थिति पर पर्याप्त लेखन करके समाज में एक सफ़ल जागृति लाई है जिससे स्त्रियों में अस्मिता बोध का भाव आया। ग्रामीण भारत में अधिकांश: देखा गया है कि दूरदराज के ग्रामीण क्षेत्रों में दलितों के लिए सामाजिक स्तर, आर्थिक, पिछड़ेपन और निरक्षरता के कारण दलित महिलाओं को विशेष रूप से विधवा दलित महिलाओं को डायन के नाम पर निर्वस्त्र कर घुमाने और बलात्कार किए जाने की घटनाओं के समाचार अक्सर पढ़ने को एवं सुनने को मिलते रहते हैं। दलित कामकाजी महिलाओं के साथ बलात्कार की घटना को अंजाम देने वाले कुकर्मी लोग ऐसा समझते हैं कि किसी मिठाई वाले की दुकान से गुलाब जामुन खरीद कर खा लिया हो। जब भारतीय समाज में ऐसी सोच विद्यमान रहेगी तो सभी विमर्शो की प्रासंगिकता अपने आप समाज को कटघरे में खड़ा कर देती हैं कि हम कहाँ खड़े हैं? जहाँ नारी की पूजा होती है या वहाँजहाँ बलात्कार होता है? और न्याय बिलकुल नहीं होता है तथा तीनों किसान बिल के विरोध में किसानों की सात सौ से ज्यादा मृत्यु जाने के बाद भी सरकार अपनी नींद से ढेर में नहीं जागी। लेकिन जैसे ही चुनाव का बिगुल बजा सरकार हिल गयी और कृषि कानूनो को रद्द कर दिया । जब की आधी आबादी नारी एवं दलित, आदिवासी, पिछड़ी महिलाओं के अधिकार के लिए कौन जागेगा अर्थात् कौन आंदोलन करने का प्रयास करेगा?

प्रो. थोराट के अनुसार “दलित नारी तीसरे शोषण का शिकार है । जाति के आधार पर महिला होने के आधार पर और गरीब होने के आधार पर

तीनों तरह के शोषण दलित महिलाएं झेलती है। इस मुद्दे को उतनी शिद्दत के साथ नहीं उठाया गया जितना उठाना चाहिए था । उनके अनुसार दलित महिलाओं पर पारिवारिक दबाव भी है जिससे अपनी समस्या को वे भी अभिव्यक्ति या आवाज नहीं दे पा रही है। इसके लिए प्रोफेसर थोराट दो चीजों को आवश्यक मानती है । एक तो दलित महिलाओं को अम्बेडकर की विचारधारा से प्रभाव ग्रहण करना होगा और दूसरा पितृसत्तात्मक समाज में पुरुषों को अपनी सोच भी बदलनी होगी कि अगर हम महिलाओं को उनकी समस्याओं से निजात दिलाना चाहते हैं तो उन्हें स्वतंत्र करना होगा।"[21] यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो सारे विमर्श निष्क्रिय माने जाएंगे।

श्यौराज सिंह बेचैन जी ने अपनी आत्मकथा 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' में अपनी मां के संबंध में कहते है कि, पुरुष उत्पीड़न की शिकार तो स्वयं लेखक की मां भी है अपनी आत्मकथा में बेचैन लिखते हैं । "मुखी (बेचैन की माता) के पति की मौत के बाद अपार दुखों का सिलसिला शुरू हो जाता है । रामलाल यानी दूसरे पति के यहाँ कुछ ठीक था परन्तु भिखारी यानी तीसरे पति ने तो जिंदगी नरक ही बना दी । सबसे दुखद यह है कि भिखारी अम्मा को लाठीडंडे- कलाबू या पूरहे से मारा-पीटा करता था।"[22] इसके साथ ही कौशल्या बैसंती जी की आत्मकथा 'दोहरा अभिशाप' जो समाज में रहने वाली समस्त दलित स्त्रियों के जीवंत यथार्थ एवं उसके संघर्ष की कथा को प्रस्तुत करती है । दलित नारी होने की समस्या खासकर कौशल्या जी ने झेली है जो की बहुत ही हृदय विदारक है । एक पढ़ी-लिखी दलित नारी का भी शोषण दलित समाज में सामंजस्य के अभाव में अक्सर होता है । बैसंत्री लिखती हैं "देवेंद्र कुमार (लेखिका का पति) को पत्नी सिर्फ खाना बनाने और शारीरिक भूख मिटाने के लिए चाहिए थी । पैसे अलमारी में ताले में बंद कर रखता था और रोज दूध सब्जी के लिए पैसा देता था.... मेरे कई बार पूछने पर 10 मिनट तक कोई उत्तर न देता था । मेरे कपड़े, चप्पल की सिलाई के

लिए पैसे लेने के लिए बहुत ही पीछे पड़ना पड़ता, तब पैसे देने की बात आती तब कुछ न कुछ कारण निकालकर झगड़ा करता, मारने दौड़ता।"[23] ऐसी घटनाएँ हमें समाज में अपने घर के आसपास आज भी देखने एवं सुनने को मिल जाती है ऐसी हजारों चुनौतीयाँ आज भी समाज में भरी पड़ी है।

हिंदू समाज में विवाह संस्था के अमानुषिक स्वरूप को देखते हुए एवं उससे जूझते हुए अज्ञात हिंदू महिला पुनर्विवाह की पैरवी करते हुए भी विधवाओं को दोबारा से विवाह न करने की सलाह नहीं देती । उसका मानना है कि शादी करने पर हमें अपने सभी अधिकार दूसरों को सौपने पड़ते हैं यहाँ तक कि अपने शरीर पर भी अपना अधिकार नहीं रह जाता है। सीमन्तनी उपदेश के कुछ समय पश्चात प्रकाश में आई दु:खिनी बाला की सरला: एक विधवा की आत्मजीवनी अपने समय से बहुत आगे की रचना साबित होती है।

एक स्थान पर शिवरानी देवी 'समझौता' कहानी में लिखती हैं 'नौकरी करना बहुत आसान है या मुश्किल, इसके बारे में स्त्रियाँ आप लोगों की राय नहीं पूछने जाती । वे यह जानती हैं कि बिना मुश्किल काम किए उनका यथार्थ आदर नहीं हो सकता इसलिए अब वह आसान काम छोड़कर मुश्किल काम करेंगी । जब पुरुषों को घर के काम करने का तजुर्बा हो जाएगा तब उन्हें स्त्रियों की कदर मालूम होगी और अगर पुरुष मुश्किल काम कर सकता है तो नारी भी कर सकती है । आज महिलाएं हर क्षेत्र में पदार्पण कर रही हैं जो वर्तमान समय का शुभ संकेत माना जा सकता है जिससे आने वाला समय और बेहतर होगा।

शिवरानी देवी के पश्चात हिंदी साहित्य में सुभद्रा कुमारी चौहान, सावित्रीबाई फुले, महादेवी वर्मा जैसी सुप्रसिद्ध लेखिकाओं के नाम लिए जाते हैं जिन्होंने नारी के लिए आवाज उठाई । इसके पश्चात तो नारी विमर्श पर लेखिकाओं की एक पूरी फौज इसको गति प्रदान करने के लिए खड़ी दिखाई

देती है जिन्हें साहित्य जगत में उपयुक्त स्थान और पहचान भी नहीं मिली। उसी तरीके से इन महान विभूतियों को भी अनदेखा किया गया जिसमें ज्योतिबा फुले, सावित्रीबाई फुले, डॉ. आंबेडकर, फातिमा शेख तथा एक अज्ञात हिंदू महिला, दुखिनी बाला तथा शिवरानी देवी जैसे कुछ नाम हैं। जिन्हें साहित्य जगत में वह स्थान अर्थात् वह पहचान नहीं मिल सकी जो उन्हें मिलनी चाहिए थी। वे सारे मुद्दे जो वर्तमान नारी विमर्श उठाता हैं उससे बहुत पहले ही ये स्त्रियाँ अपने-अपने तरीके से ना सिर्फ सामने लाती वरन अपने अधिकारों के लिए विद्रोह, बगावत एवं संघर्ष भी करती है। समाज में महिलाओं के ऊपर होने वाले अत्याचारों के कई रूप आज भी हमारे सामने प्रत्यक्ष रूप से विद्यमान हैं। इसमें पारिवारिक अत्याचार, छेड़छाड़, बलात्कार, दहेज हिंसा, मनोवैज्ञानिक हिंसा, कामकाजी महिलाओं के साथ शारिरिक एवं मानसिक रूप से डराना-धमकाना इस प्रकार के अत्याचारों द्वारा स्त्रियों की प्रताड़ना की जाती है।

साहित्य-समाज के स्वरूप को अभिव्यक्त करने का बहुत ही सुन्दर माध्यम है । समाज में जो घटित हो रहा है साहित्य उसकी तस्वीर होती है । यह तस्वीर आदर्श और यथार्थ के समन्वय के चाहे जिस अनुपातिक संयोजन से बनी हो उसमें साहित्यकार या चिंतक का सुधारात्मक या दिग्दर्शनात्मक दृष्टिकोण अवश्य परिलक्षित होता है। समकालीन हिंदी साहित्य में 1960के बाद की विविध सामाजिक स्थितियों, संभावनाओं, अभावों और आवश्यकताओं की समावेशी अभिव्यक्ति हुई है। समकालीन साहित्य में नारी विमर्श इस विवाद का भी विषय निरन्तर बना रहा कि नारी विमर्श सिर्फ स्त्रियों के लिए सुरक्षित क्षेत्र है या लेखक होने के नाते पुरुष भी इसमें सहभागिता प्राप्त कर सकता है अथवा नारी विमर्श में नारी पुरुष दोनों को स्थान दिया जाए इस बात पर बहुत से आलोचकों एवं विचारकों में मत भेद भी अक्सर पाया जाता रहा है। इसका जवाब हिंदी कथा साहित्य की प्रख्यात

लेखिका चित्रा मुद्गल मानती है कि, "नारी विमर्श सम्पूर्ण अभिव्यक्ति का दायित्व है। यदि यह बाबा नागार्जुन का नारी विमर्श है तो वह हमें मंजूर है। मैं नहीं मानती कि जो महिलाएं लिखेंगी वही नारी विमर्श का हिस्सा होगा परन्तु इसके साथ मेरी कुछ शर्त भी है । मेरा स्पष्ट मानना है कि कुछ पुरुष नारी विमर्श को गलत दिशा दे रहे हैं। वे स्वच्छंदता को नारी विमर्श का नाम देना चाहते हैं । विडंबना यह है कि कुछ लेखिकाएँ भी उनके बहकावे में आ रही है यह दिशा हमें मंजूर नहीं है इसलिए मैं यह मानती हूं कि नारी विमर्श की दिशा तय करेंगी। नारी विमर्श नारी को देह का नहीं उसके अस्तित्व का विमर्श है, उसके अस्तित्व की पहचान है।"[24]

आज की नारी सहानुभूति की जगह सबसे अपना हक मांगती है । महादेवी वर्मा ने अपनी लेखनी से नारी को अपने अधिकारों के प्रति सजग रहने की चेतावनी दी अपने अधिकारों और शक्ति को पहचानने की प्रेरणा नारी समाज को उन्होंने ही प्रदान की है शिक्षा, कानून, विज्ञान, समाज सेवा, चिकित्सा, कारीगरी, साहित्य जो भी क्षेत्र हो इनमें कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं रहा जहाँ नारी कार्य न कर सकती हो। अब उसके पर लग गए हैं वह पृथ्वी से आकाश में उड़ने लगी है तथा आकाश को छूने लगी हैं। पिछले कुछ दशकों में देश दुनिया की लेखिकाओं ने आकाश को अपनी मुट्ठी में कैद करने का बीड़ा उठाया। स्त्रियों से जुड़े तमाम प्रश्नों ने साहित्य जगत में उथल-पुथल मचा दी । अनेक लेखिकाओं के नाम साहित्य के पर्दे पर दिखाई देने लगे। जूलिया क्रिस्तोवा, जर्मन ग्रियार, वर्जिनिया वुल्फ, सिमोन द बोउआ जैसी प्रबुद्ध लेखिकाएँ सामने आयी। उनके स्वर में नारी स्वर अनु-गुंजित थी इन विचार परक लेखिकाओं ने इस बात पर जोर दिया कि नारी को सिर्फ लिंग के कारण महत्व देना उचित नहीं है अंग विशेष की आड़ में नारी का दमन ना काबिल बर्दाश्त है। महिला या नारी जाति को हमेशा 'वस्तु' या 'चीज' समझने वाले पितृसत्तात्मक समाज ने कभी यह सोचने का प्रयास नहीं किया कि नारी देह

भी इच्छा और कामना की रेशमी शिराओं में गुथी होती है जो प्रेम का संचार चाहती है । नारी के मन को उसकी आत्मा को धर्म और नैतिकता की रस्सियों में बाँधकर रखने वाले पुरुष समाज को दंभ है कि वह पुरुष है और समाज में स्त्रियों से ज्यादा उनका वर्चस्व है।

महादेवी वर्मा ने अपने निबंधों में नारीत्व के प्रति संवेदनशीलता तथा पुरुषत्व के प्रति- विमुक्त को भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्त करने में सफलता प्राप्त की है । वे लिखती है कि "पुरुष का जीवन संघर्ष से आरंभ होता है और नारी का आत्म समर्पण से, जीवन के कठोर संघर्षों में जो पुरुष विजयी प्रमाणित हुआ उसे नारी ने कोमल हाथों से जयमाला देकर अपनी स्निग्ध चितवन से अभिनंदित करके और स्नेह प्रवण आत्म निवेदन से अपने निकट पराजित बना डाला । पुरुष को यदि ऐसे वृक्ष की उपाधि दी जाए जो अपने चारों ओर के छोटेछोटे पौधों का जीवन रस चूस कर आकाश की ओर - बढ़ता जाता है तो नारी को ऐसी लता कहना गलत ना होगा जो पृथ्वी से बहुत थोड़ा सा स्थान लेकर अपनी सघनता से अंकुरों को पनपती हुई वृक्ष की विशालता को चारों ओर से ढक लेती है।"[25]

भारतीय नारी समाज के सभी बंधनों को तथा रूढ़ियों की जंजीर को तोड़कर उस खुले आकाश में विचरण करना चाहती है तथा संबंधों के तानेबाने के बीच अपने अस्तित्व को बचाए रखने के लिए सत-त् किया जाने वाला उसका यह प्रयास ही उसकी वैचारिक क्रांति को एक मजबूत आधारशिला देता है जिससे आज की नारी स्वतन्त्र होकर समाज में जी सके। विधाता की सृष्टि में नारी एक महत्वपूर्ण एवं विलक्षण तथा अद्भुत तत्व है जिसके बिना सुंदर सृष्टि की कल्पना नहीं की जा सकती। नर की अपेक्षा 'नारी' शब्द एक शक्ति की ओर संकेत करता है। इसका अपना अलग वैशिष्ट्य है। धर्म और श्रद्धा की पावन प्रसूति नारी मानव जीवन की एक विलक्षण प्रतिभा एवं शक्ति संपन्न एक ऐसी जाति है जिसमें जीव मात्र समाया है।

डॉ. राजेन्द्र यादव जी ने अपनी पुस्तक 'आदमी की निगाह में औरत' में दो टूक लिखा है की "हम पुरुष को उसकी संपूर्णता में देखते हैं परन्तु नारी को हम संपूर्णता में नहीं देख पाते हैं। पुरुष शासित तंत्र के बनाए गए मिथक को तोड़कर एक नारी आजाद होना चाहती है।"[26] वस्तुत: दोनों ही स्थितियों में वह नारी होने की अपनी नियति से उबर नहीं पाती जबकि महादेवी वर्मा जी की दृष्टि से नारी का सारा संघर्ष ही 'वस्तु' से 'व्यक्ति' होने की यात्रा का है। हर घटित होने वाली घटना में दोषी एक नारी को ही बनाया जाता है फिर चाहे वह गलत हो या ना हो सजा की रस्म अदायगी उसे करनी ही पड़ती है। मर्द रिश्ता बनाता है मगर उसे निभाती नारी है, क्योंकि सृष्टि के इस खेल में सूत्रधार तो औरत है मर्द तो केवल चश्म होते हैं उनके प्यार मोहब्बत की उम्र बहुत छोटी होती है।

आधुनिक युग की वास्तविकता तो यह है कि संघर्ष के इतने लंबे दौर से गुजरने वाली शोषित नारी को चाहे जितना मजबूर या प्रताड़ित किया गया हो परन्तु इतना तय है कि नारी के संघर्ष, विकास एवं सफलता का इतिहास अनेक पड़ाव को पार करता हुआ अनेक मोड़ों से गुजरता हुआ आज वर्तमान में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुका है। इसी क्रम में नारी को इतिहास भी चाहिए, परंपराएं भी चाहिए परन्तु दोनों सिर पर लाने के लिए नहीं चाहिए बल्कि निर्मम पड़ताल के लिए चाहिए। बिना इस इतिहास और परंपरा की पड़ताल से गुजरे नारी को उसकी अपनी कहानी नहीं मिल सकती लेकिन वास्तविकता यह है कि नारी-विमर्श बीसवीं शताब्दी की ही देन है।

हमें प्रस्तुत अध्याय में अध्ययन करते समय दृष्टिपात हुआ कि समय के साथ-साथ नारी विमर्श में सुधार या जागृति आना शुरू हो चुका है लेकिन, पूर्णत: जागृति आना अभी शेष है। जब तक प्रत्येक नारी अपने अधिकारों के प्रति सचेत नहीं हो जाती तब तक नारी विमर्श अधूरा है। सभी लेखिकाएँ अपने लेखन के माध्यम से समाज की सच्ची तस्वीर साहित्य, मीडिया एवं

व्यवहार में आ जाए उसी दिन नारी विमर्श अपनी पूर्णतः को प्राप्त कर लेगा ।

निष्कर्ष:–

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हमने इस शोध अध्याय में स्त्री विमर्श की पूर्व पीठिका को पुष्टि तथ्यों के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है जिसमें नारी विमर्श के अर्थ, परिभाषा तथा उसके स्वरूप को प्रस्तुत करते हुए नारी की स्थिति को प्रस्तुत किया है। नारी विमर्श आज भी समय के साथ उसकी प्रासंगिकता बनी हुई है क्योंकि जब तक सभी महिलाएं अपने अधिकारों के प्रति सजग नही हो जाती तब तक यह विमर्श अपूर्ण है। उसमे भी सवर्ण महिलाओं की अपेक्षा दलित महिलाओं में विमर्श की रोशनी की जरूरत अभी भी बनी हुई है। निम्न बिंदुओं में देख सकते हैं:-

- नारी का परम्परा से शोषण होता रहा है।
- नारी विमर्श लेखन से नारी मुक्ति की कामना की जाती है।
- मुख्य धारा की महिला लेखिकाएं एवं दलित महिला लेखिकाओं का लेखन उपलब्ध होता है।
- नारी जीवन को बेहतर बनाने का प्रयास हो रहा है।
- नारी मुक्ति की कामना की गई है।
- मानवीय अधिकारों से परिचित होती हुई वर्तमान भूमिका के पद पर अग्रसारित हो रही है।

संदर्भ सूची

1 स. डॉ. द्वितीय मेधा तथा अन्य हिंदी महिला कथाकारों के साहित्य में नारी विमर्श, क्लासिकल पब्लिशिंग कंपनी नई दिल्ली 2012, पृष्ठ-२८

2 व्होरा कृष्ण मोहन, 'तस्लीमा के हक में', पृष्ठ संख्या - १००

3 आशारानी व्होरा, भारतीय नारी: दशा और दिशा, पृष्ठ संख्या - १६

4 जगदीश्वर चतुर्वेदी, स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, पृष्ठ संख्या-२०६

5 हिंदुस्तानी त्रैमासिक पत्रिका, जुलाई -सितम्बर २०१६,

पृष्ठ संख्या २५५--

6. बेचैन सिंह श्यौराज, "स्त्री विमर्श और पहली दलित शिक्षिका", प्रकाशक : साहित्य संस्थान, दिल्ली, साल : 2002, पृ. क्र. 13

7. बेचैन सिंह श्यौराज, "स्त्री विमर्श और पहली दलित शिक्षिका", प्रकाशक : साहित्य संस्थान, दिल्ली, साल : 2002, पृ. क्र. 70

8 महादेवी वर्मा, श्रृंखला की कड़ियाँ, लोक भारती प्रकाशन, तृतीय संस्करण 2001, पृष्ठ संख्या-६१/६२

9 समाजशास्त्र का परिचय, डॉ. शिवभानु सिंह से उद्धरत, पृष्ठ संख्या-४७९

10 होइहें सोई जो पुरुष रचि राखा, राज कमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2006, पृष्ठ संख्या-१५

11 हिंदुस्तानी त्रैमासिक पत्रिका, जुलाई -सितम्बर २०१६,

पृष्ठ संख्या --१४३

12 सं.निवेदिता मेनन संध्या आर्य, सिनीलोकनीता नारीवादी राजनीतिक संघर्ष एंव मुद्दे हिंदी माध्यम, कार्यान्वयन निर्देशालय, दिल्ली, पृष्ठ संख्या-१-२

13 हिंदी पॉकेट बुक, नई दिल्ली, मार्च 2004, पृष्ठ संख्या-२६-२७

14 हिंदी पॉकेट बुक, नई दिल्ली, मार्च 2004, पृष्ठ संख्या-२६

15 शिवरानी देवी, प्रेमचंद घर में आत्मा राम एंड सन्स, दिल्ली 1991,
पृष्ठ संख्या-१५२

16 सुमन राजे: इतिहास में नारी, भारतीय ज्ञानपीठ, 2012, पृष्ठ संख्या-१०१

17 एच एल दुसाध-सामाजिक परिवर्तन और वी. एस. पी.पृष्ठ संख्या-२७५-२७६

18 एच एल दुसाध-सामाजिक परिवर्तन और वी. एस. पी.पृष्ठ संख्या- पृष्ठ २७६

19 हिंदुस्तानी त्रैमासिक पत्रिका, जुलाई -सितम्बर २०१६, पृष्ठ संख्या --१७६

20 हिंदुस्तानी त्रैमासिक पत्रिका, जुलाई -सितम्बर २०१६, पृष्ठ संख्या --१७७

21 हंस पत्रिका, प्रो. विमल थोराट का साक्षात्कार, वर्ष19 अंक अगस्त 2014, पृष्ठ संख्या-३०
22 वसुधा दलित विशेषांक अंक 58 जुलाई सितम्बर 2003, पृष्ठ संख्या-५८
23 बैसंत्री कौशल्या: दोहरा अभिशाप, परमेश्वरी प्रकाशन, नई दिल्ली (1999), पृष्ठ संख्या-१०४-१०५
24 हिंदूस्तान पत्र, 8 मार्च 2006 साक्षात्कार
25 स्मृति की रेखाएँ, महादेवी वर्मा, पृष्ठ संख्या-६८
26 प्रतिभा, प्रबुद्ध मिश्रा, पृष्ठ संख्या - ४७

*****